प्रति

इस सं
से कई
है। '
कहानि
के प्रति

इस स
जो स
शास
कहतं
नरसं
का प
शिख
के अ
करत
लिख
इसी

इस
भार
व्यव
ढंग

विकास पेपर बैक्स
मेन रोड, गांधी नगर, दिल्ली-110031

प्रतिहिंसा तथा अन्य कहानियाँ

मुद्राराक्षस

© लेखक

प्रकाशक
विकास पेपरबैक्स
IX/221, मेन रोड, गांधीनगर
दिल्ली-110031

प्रथम संस्करण
1992

मूल्य
पचास रुपये

मुद्रक
अजय प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

PRATIHINSA TATHA ANYA KAHANIYAN (Hindi)
by Mudrarakshas
Price : Rs. 50.00

अपने प्रिय साथी
विलायत जाफ़री को

दौड़ने लगा।

बहुत देर तक और पूरी शक्ति-भर वह दौड़ता रहा। गाँव पीछे छूट गया। खेत निकल गए। फिर उजाड़ मैदान भी पीछे छूट गया।

कँटीली झाड़ियों और बारिश से कटी जमीन की दरारोंवाले इलाके तक पहुँचते-पहुँचते वह थककर लड़खड़ाने लगा। वह तब तक भागता ही रहा जब तक उसके पैरों ने उसका साथ देना एकदम बन्द नहीं कर दिया। सूरज बिल्कुल उतर आया था और रात की धुंध बहुत पहले से ही घुमड़ने लगी थी। अब क्या समय रहते वापस लौटा जा सकेगा? वह जहाँ लड़-खड़ाकर गिरा वहाँ सिरसे की अकड़ी हुई जड़ें इस तरह उभरी दीख रही थीं जैसे किसी मृत्यु की घाटी में बहुत-से साँप सूखकर जम गए हों।

बुरी तरह हाँफते हुए उसने पीछे पलटकर देखा। गाँव बहुत दूर, बहुत पीछे छूट गया था। उसके हाथ में खून लगी पट्टी अभी उलझी थी।

छल्ली?···अब? अब क्या वह कुछ कर पाएगा?···हरी हाथ की मैली पट्टी घूरता रहा। उसे ताज्जुब हुआ कि उसे रोना क्यों नहीं आ रहा। और तभी जैसे उसकी छाती फोड़कर रुलाई उभरी। आसमान पर सूखे रक्त की शिराओं की तरह छपे कंकाल दरख्तों को घूरता हुआ वह जोर-जोर से रोने लगा।

कुश्ती

हर शाम, बिल्कुल इसी समय, पिछली खिड़की पर थोड़ा-सा लटककर खड़ा होना जैसे एक यान्त्रिक क्रिया हो गई है।

पीछे छोटे-से स्टूल पर रखी चाय ठंडी होने में समय लगता है। कभी-कभी उन्हें समय का सही अन्दाज नहीं मिल पाता तब वे जरूरत से कुछ ज्यादा ठंडी हो गई चाय भी डालते हैं, बस थोड़ी गुनगुनी-सी। एक बार दाँत की तकलीफ हो गई थी और ठंडी या गर्म कोई भी चीज असह्य टीस पैदा कर देती थी। तभी से गर्म चाय की आदत छूट गई।

खिड़की से इस वक्त नीचे बहता हुआ पानी बेआब कोलतार की सड़क से गुजरे पुराने टैंकर से बहते चले गए मोबिल ऑयल-सा दिखाई देता है, कहीं चौड़ा, कहीं सँकरा, कहीं बलखाया या फटा हुआ-सा।

पानी के उस बहाव को उन्होंने पसन्द कभी नहीं किया लेकिन उससे पहचान बना ली है। ठीक अपनी पत्नी की तरह। उन्हें नहीं मालूम कि वे उसे प्यार करते हैं या नहीं पर वह उनकी अपनी है।

कुछ लोगों के लिए समझौता कितने स्तरों पर होता है। वे कभी ऐसे मकान में न रहे जो किसी नदी या झील के किनारे हो। उनके प्रभारी अधिकारी रिवरबैंक कालोनी में रहते हैं। जिस नदी के किनारे उनकी कालोनी है, उसी में जाकर मिल गया है यह नाला। इसे नाला ही कहा जाता है क्योंकि यह इतना चौड़ा और गहरा है कि बारिश में एक अच्छी-खासी नदी में तब्दील हो जाता है लेकिन फिर भी यह नाला ही कहा जाता है। क्योंकि बाकी मौसमों में बहुत तीखी तेजाबी गन्धवाले पानी की एक मोटी और बेढंगी लकीर बनी रहती है, बहुत चौड़ाई में फैली, ऊब-डूब करती काली दलदल के ऊपर सूअरों की पाँत की तरह लौटती।

उस बहुत चौड़े और गहराई से बहते नाले के दोनों किनारे पक्की ईंटों से सधे हैं और कहीं उन्हीं पर पीठ टिकाकर और कहीं थोड़ा हटकर दोनों तरफ मकान हैं। दूर तक, टिन, खपरैल, पक्की छतें और यहाँ तक कि पॉलिथिन की फटी चादरें ओढ़े।

हर मकान में पीछे एक सपाट खिड़की या झरोखा है और नीचे की तरफ गन्दगी नाले में गिरानेवाला सुराख, काई और सड़क की कालिख उगलता हुआ। हर घर जैसे वहाँ बैठा हुआ देर से अपना पेट साफ कर रहा हो। नाला दूर तक ज्यों-का-त्यों चला गया है और आगे आसमान को फाड़कर उसमें समा गया है। बारिश के बादल यहीं उठते हैं और वहीं ठहरे हुए अच्छे लगते हैं। बढ़कर मकानों पर छा जाते हैं तो सिहरन-सी होती है कच्चे से अँधेरे की और सीलन की। बादल जब शाम को कभी रंगीन होते हैं तो नाले के उस पानी के फैले हुए चिथड़े पर भी झलकते हैं। तब वह तेजाबी गन्ध भूल जाती है।

यह सब उतना बुरा तो नहीं है और उनका अनुमान है कि रिवरबैंक कालोनी के दयाल साहब के घर से दिखाई देनेवाली नदी इससे कुछ बहुत थोड़ा अच्छी नहीं दिखती होगी। थोड़ा पानी ज्यादा और कुछ चौड़ाई अधिक। लेकिन बादलोंवाली शाम का रंग वहाँ इससे बहुत ज्यादा चटकीला क्या होगा!

हाँ, छत पर चढ़ जाने के बाद यह दृश्य थोड़ा बदल जाता है। आसमान तो वैसा ही रहता है। आसपास, दूर तक चली गई कबाड़ लदी छतें भी वैसी ही रहती हैं। पर नीचे का नाला एक अजब दहशत-सी पैदा करता है। कभी उन्होंने सिन्दबाद की यात्राएँ पढ़ी थीं। उस किताब में सिन्दबाद एक बार मौत की घाटी के किनारे जा पहुँचता है। वह कैसी थी यह याद नहीं। लेकिन छत से नाला काफी ठंडा लगता है, मृत्यु की तरह, हजारों बरस के नरक की तरह सड़ता हुआ।

लेकिन रिवरबैंक कालोनी की नदी कौन-सी कम भयावह लगती है। पुल पर खड़े हो तो आँतों को खींचना शुरू कर देती है।

पीछेवाली जिस खिड़की से वे झाँक रहे थे, उस पर लटका भूरा-सा कपड़ा उन्होंने बाकायदा खींच दिया। वह खींच देने पर घर बदल जाता है। पूरा मकान नाले के किनारे से खिसककर शहर के बीच आ बैठता है।

उन्होंने कमरे में निगाह दौड़ाई। कुर्सियाँ वगैरह थोड़ी पीछे हटानी होंगी। पीछे तो खैर नहीं हट पाएँगी। जगह नहीं है। पर बीच से कढ़े हुए केसमेंट से ढकी मेज वगैरह एक किनारे करनी होगी। इतने-भर से जगह निकल आएगी। थोड़ी-सी वर्जिश के लिए वह काफी होगी। ज्यादा कसरत की जरूरत तो नहीं ही होगी। शरीर में अभी मजबूती बनी हुई है। पेशियों में कसाव है। फुर्ती भी है। कुश्ती के दाँव-पेच वे भूले नहीं हैं। लेकिन दाँव-पेच से ज्यादा जरूरी है, सहनशक्ति और मनोबल। वह दोनों हैं। फेफड़ों में साँस भरने की क्षमता बढ़ानी होगी। इतना पर्याप्त है।

दयाल को कुश्ती में हराना मुश्किल काम नहीं है। उनके बाल सफेद ही ज्यादा हैं। गौर करने पर विश्वास हो सकता है कि पहली मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद वे हाँफते हैं। साँस फूलने लगती है, भले ही उतनी ज्यादा नहीं। उनका कमरा अगर दूसरी या तीसरी मंजिल पर होता तो साँस खासी ही फूलती। कुश्ती में अगर उन्हें सिर्फ थोड़ी देर रोका-भर जा सके तो वे बेदम हो जाएँगे। इतनी साँस फूल जाएगी कि उन्हें गिराया जा सके।

लेकिन क्या यह सब सच है? कुश्ती होगी? टाइपिस्ट-क्लर्क सतीश बहादुर और ऑफिस इंचार्ज दयाल के बीच क्या इस तरह की कुश्ती दफ्तर में ही सारे कर्मचारियों के सामने सचमुच मुमकिन है?

उस दिन निदेशक महोदय दफ्तर का मुआइना कर रहे थे। हर कमरे का, हर कर्मचारी का। वे तीसरी मंजिल पर भी आए। उनके साथ उप-निदेशक और प्रभारी अधिकारी भी थे।

सतीश बहादुर ने खड़े होकर उन्हें ध्यान से देखा था। निदेशक के साथ आए दयाल कुछ अजीब लग रहे थे। उनकी शक्ति बढ़ गई थी और बदन, छोटा हो गया था। निदेशक के साथ वे ऐसे लग रहे थे जैसे वे अपने बड़े अफसर के साथ नहीं किसी हंटर के साथ आए हों लेकिन वह हंटर कुछ इतना वजनी और बड़ा हो कि उसे लटकाना नहीं, ढोना पड़ रहा हो।

उसी जगह सतीश बहादुर बोल पड़े, "सर, ये टाइपराइटर···।"

"टाइपराइटर? क्या टाइपराइटर?" दयाल ने तुरन्त थोड़े तीखेपन

में हंटर इधर घुमाया। निदेशक सिर्फ मुस्कराए, हल्की-सी सवालिया निगाह के साथ।

"इसमें सर, 'ज' अक्षर टूट गया है और बड़े 'आ' की मात्रा गलत जगह लगती है। स्पेस···।"

"मैं इसमें क्या कर सकता हूँ? मैं पेचकस लेकर बैठूंगा क्या ? इसे ठीक तो होना चाहिए। क्यों नहीं हुआ ?" निदेशक ने बहुत मुलायमियत से, किसी को चोट न लगे पर धक्का महसूस हो ऐसे कहा।

"लिखकर देना चाहिए था सर। मैं जानता हूँ काम न करना हो तो टूटा टाइपराइटर लिए बैठे रहो।"

"नहीं सर, मैंने तो लिखकर दिया था।"

"इन्होंने तो लिखकर दिया था।" निदेशक थोड़ा-सा मजा लेते से बोले, "अब बताइए ?"

"बिल्कुल झूठ है। मेरी मेज पर कोई कागज नहीं अटकता।" दयाल ने प्रतिवाद किया और सतीश बहादुर को घूरने लगे।

"दयाल साहब की मेज पर कोई कागज नहीं अटकता···।" निदेशक मुस्कराए, "ड्राअर में···।"

लोग बहुत शिष्टता से मुस्कराए। सतीश बहादुर ने फिर कहा, "सर, मैंने उसके बाद दो बार और लिखकर दिया। एक रिपोर्ट तो कल ही दी है सर।"

"वो भी इनकी मेज पर नहीं होगी। फिर कहाँ गई दयाल साहब ?" निदेशक इस संवाद में खेल का-सा आनन्द लेने लगे।

दयाल की कनपटियों पर परेशानी रेंगने लगी, "झूठ मत बोलो। मुझे झूठ से सख्त नफरत है।"

जाहिर है झूठ से नफरत होना नैतिक पवित्रता की निशानी है··· निदेशक इस बार अच्छी अंग्रेजी में पुरानी ही संजीदगी से बोले।

सतीश बहादुर कुछ ज्यादा ही घबरा गए। उन्हें लगा अगर वे अपनी बात साबित न कर पाए तो यहीं, अभी कोई भयंकर विपत्ति खड़ी हो जाएगी। वे और विनय लेकिन दृढ़ता से बोले, "मैंने कल टाइपराइटर के बारे में रिपोर्ट दी, उसे आपने पढ़ा भी था। आपको याद होगा साहब। और

फिर आपने साहब, उसी पर रखकर मूँगफली खाई थीं। दो मूँगफलियाँ नीचे लुढ़क···"

"ये क्या बकवास है···?" दयाल ने हल्के से डाँटा। निदेशक उसी तरह मुस्कराते हुए बोले, "लेकिन उस पर मूँगफली क्यों खाईं आपने ? बादाम, काजू भी खा सकते थे, या फलों की चाट भी तो नीचे मिलती है। इनसे दिमाग को ताकत मिलती है। फलों में विटामिन ज्यादा होते हैं। आप फल नहीं खाते हैं ? या हरी सब्जी ?"

"जी खाता हूँ सर, मगर मैं इसे बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। यह काम ही नहीं करना चाहता···।"

"हूँ, ये तो मुश्किल मसला है। सतीश बहादुर साहब काम नहीं करना चाहते और दयाल साहब की मेज पर कोई कागज नहीं रहता।" निदेशक सोचने का नाट्य-सा करते हुए बोले, "यह तो मुश्किल है। फैसला हो कैसे ? क्यों साहब ?"

निदेशक ने अपने कौतुक की मुट्ठी कमरे में अदब और मुस्कराहट के स्टूलों पर खड़े बाकी लोगों की तरफ कर दी। वे सिर्फ मुस्कराते रहे। बोले कुछ नहीं।

"एक रास्ता है मिस्टर दयाल, आप कभी कुश्ती लड़ते थे। लड़ते थे न ?"

"जी हाँ साहब।"

दयाल का यह सबसे प्रिय विषय था। कुश्ती में कब क्या दाँव लगाना चाहिए इसका ब्योरा देते हुए वे अक्सर अपनी जाँघ पर हाथ मारकर अपने प्रभावशाली अतीत की तस्वीर खींचते थे। कभी-कभी किसी को आज भी ललकार देते थे। बड़ा गुमान है जवानी का ? आओ, दो-दो हाथ हो जायें—

निदेशक और अधिक मुस्कराये, "आप मिस्टर सतीश बहादुर को उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दीजिए।"

"मन तो करता है साहब···।"

"मगर सतीश साहब भी कसरती लगते हैं। उठा पाएँगे ?"

"बिरजू उस्ताद से कुश्ती सीखी थी मैंने। मुझसे पकड़ करने में बड़े-बड़ों के छक्के छूट जाते थे सर !"

"तो हो जाए।"

"जी ?"

"हो जाए कुश्ती !"

"सर, यह अद्‌भुत होगा···।" कमरे के बाकी लोगों ने खुशी और उत्साह से कहा। दयाल साहब सकपका गए और उन्होंने थोड़ी सख्ती-भरी निगाहें कमरे में के लोगों पर डालीं। लेकिन लोगों की कौतुक लिप्सा में कोई फर्क नहीं आया।

"तो हो जाये, फिर, अभी हो ?"

दबे हुए क्षोभ की प्रतिक्रिया में दयाल ही कहते-कहते रुक गये कि फिर बोले, "क्यों साहब, उन्हें पटखनी दिलवाना चाहते हैं, छोड़िए···।"

"ये तो पीछे हटना हुआ दयाल साहब।" निदेशक खासा मजा लेने लगे। वह प्रसंग इतना रोचक था कि एक बार शुरू हुआ तो आगे बढ़ता ही गया। दयाल की आँखों में क्षोभ के बजाय असहायता झाँकने लगी। क्षीण-सी ही सही, उन्हें उम्मीद थी कि यह प्रसंग मजाक ही में समाप्त हो जाएगा या कमरे में उपस्थित कोई उनके बचाव के लिए इस खेल को स्थगित कराने की कोशिश करेगा।

लेकिन कमरे के सभी लोग अनायास इस मामले में प्रभारी अधिकारी के विरुद्ध हो गए थे। वे इसका मजा लेने पर आमादा हो गए थे। संभव है कि इस कुश्ती में दयाल जीतें लेकिन उनसे लड़ने का जो मौका टाइपिस्ट सतीश बहादुर को मिलनेवाला था उतने से लगभग सबका बदला चुकने जा रहा था। देखते ही देखते वहाँ उपस्थित सभी लोगों को दयाल से मिले कष्ट याद आ गए थे।

दयाल बोले, "देखिए सर, मैं इनसे लड़ तो सकता हूँ, मैं इनको अच्छी तरह पटकूँगा लेकिन जरा महीने-भर का रियाज कर लेने दीजिए। बरसों से तो यहाँ फाइलें निबटा रहा हूँ।"

"महीने-भर का रियाज वाजिब है। तो रही दयाल साहब ! आज तारीख है सात। अगले महीने की छह तारीख पक्की रही। तय ?" निदेशक ने बाकी लोगों की तरफ देखा। लोग बहुत खुश थे।

दयाल ने उन्हें फिर घूरा। इस बार उनकी आँखों में दहशत-भरा

चिड़चिड़ापन उभर आया था। अगर उर्दू कवियों के अनुसार आँखें सचमुच छुरी या तीर का काम कर सकती होतीं तो दयाल दफ्तर के बहुत-से लोगों को अब तक बुरी तरह जख्मी कर चुके होते।

इस घटना के बाद शुरू के दो-तीन रोज लोगों ने सिर्फ उस दिन के संवादों के मजे लिए। दयाल की घबराहट किसी से छुपी नहीं रही थी। उसे याद करके भी कई रोज लोग खुश होते रहे और फिर सब कुछ भूल गए। दफ्तर में दयाल का रोबदाब फिर पहले जैसा ही दिखाई देने लगा। ठीक पहले जैसी ही खामियाँ उन्हें मातहतों के काम में मिलने लगीं। कभी-कभी तो कोई मातहत सिर्फ इसलिए भी डाँट खाने लगा कि वह वाक्य में अर्धविराम लगाना भूल गया था। दयाल को मातहत के काम में जब कोई बड़ी गलती नहीं मिलती थी और डाँटने के लिए उन्हें अर्धविराम जैसी दुरूह चीज का सहारा लेना पड़ता था तो उनका गुस्सा खासा बढ़ जाता था। तब वे सबसे पहले आज की शिक्षा की आलोचना करते थे। उसके बाद समूची नयी पीढ़ी कितनी कुंदजेहन और कामचोर है, इस पर धाराप्रवाह बोलते थे। इसके बाद देर तक वे सिर्फ डाँटते रहते थे। इतनी देर तक कर्मचारी को चुपचाप खड़ा रहना होता था। ऐसी हालत में यह भी मुमकिन होता था कि वे चीखकर कहें, अब मेरे खोपड़े पर क्यों खड़े हैं ?

जाहिर है कर्मचारी यह सुनकर वहाँ से खिसकने की कोशिश करता था। तब वे पहले से भी ज्यादा जोर से चीखते थे, "अब जा कहाँ रहा है, ऐं ?"

लोग चूँकि इस सबके आदी हो चुके थे इसलिए धीरे-धीरे उन्हें यह कार्यालय फिर सामान्य लगने लगा।

इसी बीच सहसा कुश्ती वाली बात फिर ताजी हो गयी। हुआ यूँ कि निदेशक, जो बहुत कम ही लोगों को दिखायी देते थे, एक बार फिर दिख गये। दरअसल इधर दफ्तर में दो ऐसी घटनाएँ हो गयीं जिनके कारण वे दिखे। एक तो नया साल आ गया था और दूसरे दफ्तर का एक प्रोजेक्ट बहुत ज्यादा कामयाब हो गया था। इन दोनों बातों के लिए निदेशक ने दफ्तर के सारे कर्मचारियों को अपने बड़े से कमरे में बुलाया था। शुभ-कामनाएँ देने के बाद उन्होंने दफ्तर की छोटी-मोटी कई बातें भी कीं फिर

नजर सतीश बहादुर पर टिक गयी। शरारत-भरी मुस्कराहट होंठों के अन्दर दबाकर बहुत गम्भीर आवाज में उन्होंने पूछा, "सतीश बहादुरजी, आपके टाइपराइटर में बड़े 'आ' की मात्रा अभी भी गलत जगह लगती है?"

"जी सर, वो बात यह है कि मैकेनिक ठीक तो कर गया था मगर अब उसका रिबन ही नहीं सरकता।" सतीश बहादुर ने बड़ी मासूमियत से कहा।

"हूँ। दयाल साहब···!" उन्होंने दयाल साहब की तरफ देखा। दयाल उस पल होंठ चबाने लगे थे। सहसा निदेशक बोले, "कितनी गलत बात है। मैं भी भुलक्कड़ हो गया हूँ। अरे भई, उस कुश्ती की तैयारी आप लोग कर रहे हैं न? कब होनी है कुश्ती?"

"सर, छह तारीख को···।" कर्मचारियों के चेहरों पर अचानक ही रौनक आ गयी।

दयाल ने नाराज होते हुए कहा, "सर, इस आदमी को मैं अभी बता देता अगर आपके सामने यह असभ्यता न कही जाती।"

"नहीं भाई।" निदेशक बोले, "कुश्ती तो ढंग से ही होगी। और छह तारीख को ही।"

उन्होंने केयरटेकर को मनोरंजनवाले कमरे में गद्दों का इन्तजाम करने का हुक्म दिया और दो मध्यस्थ नियुक्त भी कर दिए। सीटी लाने का काम भी सौंप दिया गया। यहाँ तक कि दो कर्मचारी आँखों देखा हाल बताने के लिए भी नियुक्त हो गए। टेपरेकॉर्डर और कैमरा लाने का काम स्टोर-कीपर के जिम्मे कर दिया गया।

इसके बाद दयाल को लगा मामला सचमुच बहुत गम्भीर है। वे खुद सतीश बहादुर का टाइपराइटर देखने उसके कमरे में आए। उसे गुर्राती हुई आवाज में घूरकर बोले, "रिबन तो मुझे तुम लोगों के दिमाग का ठीक करना पड़ेगा। और तुम—तुम इस होश में मत रहना कि कुश्ती का तमाशा करके मामला खत्म हो जाएगा। बहुत बर्दाश्त कर लिया है मैंने। कामचोरी नस-नस में भरी है! कुश्ती लड़ेंगे! ऐसा पटकूँगा कि हड्डियाँ बटोरे नहीं मिलेंगी। ये मत समझ लेना कि मेरी उम्र ज्यादा है इसलिए जीत जाओगे।"

वे देर तक इसी तरह बोलते रहे। दरअसल इस तरह वहाँ आकर डाँट-डपट करने का एक खास उद्देश्य था, वे उसके शरीर का जायजा लेना चाहते थे। सतीश बहादुर की उम्र तो अभी कम थी ही, स्वास्थ्य भी ठीक ही था। बल्कि बदन में एक तरह की कसावट और मजबूती थी क्योंकि वे कॉलेज में खेल-कूद में काफी रुचि लेते थे। यहाँ तक कि उनका खयाल था कि अगर उनके साथ नाइंसाफी न की जाती और पढ़ाई के दौरान ही शादी न हो जाती तो वे एक अच्छे पेशेवर खिलाड़ी साबित होते।

दयाल उन्हें डाँटकर या उनकी शारीरिक शक्ति का जायजा लेकर चले गए। उनके जाने के बाद सतीश बहादुर काफी निराश होकर बैठ गए। उन्हें इस बात का गहरा दुःख हो रहा था कि बहुत मुश्किल से मिली इस नौकरी का सारा सन्तोष उनके उस टाइपराइटर की बलि चढ़ गया था जो उनके सामने आने के बाद से आज तक कभी ठीक नहीं हुआ था। वह टाइपराइटर न सिर्फ बिगड़ा रहता था बल्कि बदसूरत भी काफी था। दूर से देखने पर वह टाइपराइटर कम एक अनगढ़ हथकरघा ज्यादा लगता था। इस मशीन पर काम करने में उनकी अरुचि के और दूसरे कारण भी थे।

पढ़ाई के दौरान जैसा कि हर युवा के साथ होता है, वे खासे सुहाने सपने देखने के आदी हो गए थे। पढ़ाई खत्म करके वे कभी अपने को एक अफसर पाते थे, कभी बहुत बड़ा प्रोफेसर। लेकिन पढ़ाई खत्म करने के बाद इस टाइपराइटर के पास बैठ पाने की सुविधा उन्हें बहुत ज्यादा परेशानियाँ उठाने के बाद मिली थी। तब तक उनके बच्चे भी हो गए थे। सबसे बड़ी परेशानी तो उन्हें उस दिन हुई थी जिस दिन वे तबादले पर इस शहर भेजे गए थे। दो महीने तक तो रहने लायक उन्हें कोई जगह ही नहीं मिली थी और तब जाकर कहीं उन्हें नाले के किनारे बने इस मकान की ऊपरी मंजिल पर दो छोटे-छोटे कमरे मिले थे। शुरू के कुछ दिन इस शहर के घर में बहुत ही भयानक थे। उस नाले से रात-दिन एक तीखी तेजाबी गंध उठती थी। सुबह के बाद इसमें एक और दुर्गंध भी मिल जाती थी। पर धीरे-धीरे वे इसके आदी हो गए। खासतौर से इसलिए कि जब कभी इस तेजाबी दुर्गंध को हटाकर ताजी हवा का झोंका उधर से गुजरता था तो बहुत

ज्यादा ही सुहाना लगता था। जैसे कोई आदमी बहुत कड़वी चीज खाता रहे और फिर उसे कच्चा आटा भी खिला दिया जाए तो बहुत मीठा लगे। उन्होंने अपनी अभिरुचि के इस तरह परिवर्तित हो जाने का एक अच्छा-सा तर्क भी खोज लिया था। वे अक्सर चाय पीते वक्त बीवी से कहा करते थे कि अगर दुर्गंध का अस्तित्व न हो तो सुगंध का अर्थ ही क्या रह जाये। उस नाले में उजबुजाती हुई कीचड़ हमेशा भरी होती थी। सतीश बहादुर याद दिलाते रहते थे कि कमल भी तो कीचड़ में रहता है जो कि यह महज एक कहावत थी और झूठ थी। कमल बहुत अच्छे पानी में खिलता है और कीचड़ में सिर्फ उसकी जड़ रहती है। और वह कीचड़ भी इस नाले जैसी गंदी नहीं होती। सच तो यह है कि सतीश बहादुर ने कमल देखा ही नहीं था।

तो जनाब, दयाल के जाने के बाद न चाहते हुए भी वे हमेशा की तरह गमगीन हो गए। तब उनके सामने बैठनेवाले फाइलिंग क्लर्क ने अपना मुँह खोला। ठीक ऐसे जैसे दयाल के कमरे में आने और वहाँ से जाने के बाद उस मुँह के साथ होने और खुलने का कोई स्वचालित सम्बन्ध हो। उसने कहा, "कुत्ता साला। मगर सतीश, तुम्हें इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है। साले के बदन में दम नहीं है। बूढ़ा तो हो रहा है। उठाकर पटकना जरा जोर से।"

इस बात पर डिस्पैच क्लर्क का मुँह भी खुल गया, "है तो सही बात। बहुत डींग मारता रहता था, अब पता चलेगा। मगर सतीश, तुम जरा सावधान रहना। आदमी बहुत कमीना है। तुम्हारी रिपोर्ट भी खराब कर सकता है। साल खत्म हो गया है न···।"

"रिपोर्ट?" फाइलिंग क्लर्क ने तुरन्त अपना मुँह बन्द कर लिया क्योंकि सालाना रिपोर्ट तो उसकी भी लिखी जानी थी।

"कर दे रिपोर्ट खराब, परवाह नहीं है।" सतीश नाराज होकर बोले, "उठाकर पटका नहीं तो मेरा नाम नहीं।"

"मगर अभी तो तुम्हारा प्रोबेशन है। ध्यान रखना।" डिस्पैच क्लर्क सहानुभूति दिखाता हुआ बोला, "न हो तो तुम निदेशक साहब से बात कर लो। वो चाहेंगे तो दयाल क्या, दयाल का बाप भी कुछ नहीं कर पाएगा।"

सतीश बहादुर संभावनाओं पर गौर करते हुए बैठे रहे, देर तक। धीरे-धीरे उन्होंने पाया कि हर कीमत पर इस कुश्ती के लिए तैयार हैं। जो भी हो, कुश्ती वे लड़ेंगे और दयाल को-पछाड़ेंगे।

उन्होंने कमरे के बीच की मेज हटा दी और बाकायदा वर्जिश शुरू कर दी। पिछली खिड़की से आती दुर्गंध वे भूल गए और तब तक कसरत करते रहे जब तक पसीने से नहा नहीं गए।

आखिर छह तारीख आ गयी। उस दिन वे थोड़ा जल्दी ही दफ्तर पहुँच गए। उन्हें यह देखकर बहुत खुशी हुई कि वहाँ करीब-करीब हर कोई उस अभूतपूर्व घटना की प्रतीक्षा कर रहा था। आसपास की मेजों के लोग उनके करीब आ खड़े हुए। वे आज उनकी खासी खातिरदारी भी कर रहे थे। तभी दयाल वहाँ आ गए। ताज्जुब है कि इस बार उनमें से कोई भी सकपकाया नहीं।

"क्या हो रहा है यहाँ?" दयाल हमेशा जैसे रोब से बोले।

"कुछ नहीं सर, आज कुश्ती है न···!"

"बहुत नौटंकी मत करो। कुश्ती है तो इसका मतलब यह नहीं कि काम ही नहीं होगा। तुम लोगों को हरामखोरी के लिए तो कोई न कोई बहाना चाहिए। याद रखो, मैं एक-एक को ठीक कर दूँगा।" वे नाराजी से लोगों को घूरते हुए बोले, "और ये भी याद रखना, सालाना रिपोर्ट लिखने का भी वक्त आ गया है। मैं एक-एक को होशियार कर देना चाहता हूँ, समझे?"

वे चले गए। सतीश बहादुर को लगा वह रिपोर्टवाली बात उन्हीं से कहीं गयी है।

दोपहर को सचमुच कुश्ती शुरू हो गयी। निदेशक एक कुर्सी रखकर बैठ गए थे। सतीश बहादुर ने फैसला कर लिया था कि जो भी हो दयाल को पटखनी अच्छी तरह देंगे।

दयाल बहुत गम्भीर थे।

आखिर सीटी बजी। हाथ बढ़ाने के बजाय दयाल ने सतीश को घूरा। निदेशक ने ही याद दिलाया कि उन्हें हाथ मिलाना है। हाथ मिलाने के बाद दयाल ने मौका नहीं दिया। किसी पेशेवर पहलवान की तरह लिपट पड़े।

लोग शोर मचाकर सतीश को बढ़ावा देने लगे। इससे दयाल का गुस्सा और बढ़ गया। सतीश बहादुर थोड़ा चूक जाता तो नीचे आ चुका होता, पर वह जल्दी ही सँभल गया। लोगों का शोर उसने सुना और झुककर उसने दयाल को कमर से उठा लिया। दयाल अचकचा गए। उन्होंने छटपटाकर उसकी पीठ पर एक घूँसा मारा। निदेशक ने सीटी बजायी, "घूँसा नहीं चलेगा।"

दयाल को उठा लेने पर शोर और बढ़ा और लोग उनके नीचे गिराए जाने का इन्तजार करने लगे। तभी लोगों ने देखा, सतीश बहादुर के घुटने मुड़े। वे दयाल को उसी तरह उठाए हुए बैठ भी गए और देखते ही देखते लोट गए। दयाल ने उत्साह में आकर उन्हें रगड़ भी दिया। लोग गुस्से में सतीश बहादुर को गालियाँ देने लगे।

दयाल बेहद खुश हो गए थे।

सतीश बहादुर तेजी से उठकर भीड़ में गुम हो गए। आज जब वे लौटे तो एक सन्तोष उन्हें जरूर था, उन्होंने अपनी सालाना रिपोर्ट खराब होने से बचा ली थी। बीवी की चाय का इन्तजार करते उन्होंने आज फिर पिछली खिड़की खोल ली। थोड़ी देर वे नीचे झाँकते रहे फिर परदा बन्द कर दिया। नाला कितना ज्यादा गन्दा है, उन्होंने सोचा, और बदबू भी किस कदर असह्य !

फरार मल्लावाँ माई राजा से बदला लेगी

छोटी लाइनवाली गाड़ी मल्लावाँ माई पर रुकती नहीं है। हाँ, देखनेवाले को लगता है, वह उस तीन-चार सौ गज की समतल पट्टी पर पहुँचकर हल्के से ठिठकती है। पर यह शुद्ध भ्रम है। गाड़ी वहाँ से कोई एक कोस आगे मल्लावाँ खास पर रुकती है। हो सकता है वह रुकने की तैयारी मल्लवाँ माई से ही शुरू कर देती हो। सीटी वह हमेशा इसी समतल पट्टी पर पहुँचकर बजाती है, दो बार हिचकी लेकर फिर बहुत तीखे लम्बे स्वर में। लोग कहते हैं, वह मल्लावाँ माई का नाम लेती है। आकाश की तरफ गर्दन उठाकर, खूब लम्बी साँस खींचकर।

मल्लावाँ खास सरकारी नाम है। मल्लावाँ माई भी जगह का अपना नाम नहीं है। जहाँ आज मल्लावाँ माई या उसके गिरते हुए खण्डहर हैं, वहीं एक बस्ती हुआ करती थी मल्लावाँ। ढहती कच्ची दीवारों से अटकी काली, सड़ी बल्लियों और दरवाजों की उखड़ी चौखटों के अवशेषवाली इस उजाड़ जगह के उस पार थोड़े फासले पर जो पक्की इमारत थी, वह भी ढहती दीवारों और बिखरती ईंटों के ढेर में बदल चुकी है।

कहते हैं, इन खण्डहरों में दुधारू जानवर कभी नहीं आते। सिर्फ सोमवार की शाम इन खण्डहरों से बाहर रेल की पटरी से सटी समतल जमीन पर औरतों का एक झुंड दिखाई देता है। यह झुंड वहाँ सूरज डूबने के बाद तक ठहरता है और फिर इधर-उधर बिखर जाता है।

हर सोमवार जब सूरज उतरना शुरू करता है, आसपास की गर्द और दरख्तों के रहस्य जाल से औरतें धीरे-धीरे प्रकट होती हैं। वे सब एक ही गीत गाती हैं। लेकिन बहुत देर तक गीत के बजाय अस्पष्ट जंगली आवाजों की गुंजलक-सी ही वहाँ फैलती रहती है। जैसे बाँसों के झुरमुट से हवा